E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 3, Issue- 3 | March 2026

बाज़ारवादी संस्कृति और 21वीं सदी का स्त्री लेखन : मानवीय संवेदनाओं का संकट

प्रियंका श्रीवास्तव
जलपाईगुड़ी, पश्चिम बंगाल

शोध सार

भूमंडलीकरण के पश्चात विकसित हुई बाजारवादी संस्कृति ने समाज की संरचना व मूल्यबोध को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। यह संस्कृति आवश्यकता के अनुरूप बाजार के निर्माण के स्थान पर बाजार की उपलब्धता के अनुसार आवश्यकताओं का निर्माण करती है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति उपभोक्ता में रूपांतरित हो गया है। भारत जैसे विकासशील देश में इसका प्रभाव विशेषतः मध्यवर्ग और स्त्री जीवन पर अधिक गहरा पड़ा है। 21वीं सदी के हिंदी स्त्री लेखन ने इस बाजार संचालित सभ्यता, उपभोक्तावाद, विज्ञापन संस्कृति, सौंदर्य के विकृत प्रतिमानों, नशा, अपराध और मानव तस्करी जैसी समस्याओं को न केवल रेखांकित किया है, बल्कि इनके विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर भी निर्मित किया है। यह शोध-पत्र अलका सरावगी, निर्मला भुराड़िया, अल्पना मिश्र, मधु कांकरिया, जयश्री राय, अनामिका आदि लेखिकाओं की रचनाओं के माध्यम से यह विश्लेषण करता है कि किस प्रकार बाजारवादी संस्कृति मानवीय संवेदनाओं के क्षरण का कारण बन रही है और स्त्री लेखन इस संकट को उजागर करते हुए एक वैकल्पिक मानवीय दृष्टि प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द : बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, मूल्यबोध, भूमंडलीकरण, संवेदनाओं का संकट

भूमिका

21वीं सदी का समाज भूमंडलीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया से गुजरते हुए एक ऐसे मोड़ पर आ खड़ा हुआ है, जहाँ बाजार केवल आर्थिक संरचना नहीं रह गया, बल्कि जीवन की दिशा और दशा निर्धारित करने वाली केंद्रीय शक्ति बन गया है। बाजार ने व्यक्ति की जरूरतों को नियंत्रित करना शुरू कर दिया है और सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को भी उपभोग की वस्तु में बदल दिया है। पुष्पपाल सिंह के शब्दों में - "बाजार की यह व्यवस्था, बाजार का मनुष्य को कीलने का यह माया-प्रपंच भूमंडलीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है।"[1] भारतीय संदर्भ में यह संकट और अधिक जटिल है, क्योंकि यहाँ बाजार आधुनिकता के साथ-साथ असमानताओं, वर्गीय विभाजन और स्त्री-शोषण के नए रूपों को जन्म देता है। 21वीं सदी का स्त्री लेखन इस बदलती सामाजिक संरचना को केवल दर्ज नहीं करता, बल्कि उसके अंतर्विरोधों और अमानवीय परिणामों का आलोचनात्मक विश्लेषण भी करता है। यह लेख इसी संदर्भ में बाजारवादी संस्कृति और मानवीय संवेदनाओं के संकट को स्त्री लेखन के माध्यम से समझने का प्रयास है।

१. **बाज़ार निर्मित समाज : नागरिक से उपभोक्ता तक -** भूमंडलीकरण के बाद जिस सामाजिक संरचना का निर्माण हुआ, उसका केंद्रीय आधार बाज़ार रहा है। यह समाज न केवल उत्पादन और वितरण की व्यवस्था को नियंत्रित करता है, बल्कि व्यक्ति की चेतना, आकांक्षाओं और जीवन-मूल्यों को भी गहराई से प्रभावित करता है। बाज़ार किस

*Corresponding Author Email: shrivastava123priyanka@gmail.com
Published: 12 March 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i3.45589
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

प्रकार व्यक्ति को संचालित करता है और उसकी सामाजिक उपयोगिता का निर्धारण भी करता है - इसका सूक्ष्म विश्लेषण समकालीन हिंदी लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है।

बाज़ार आज केवल वस्तुओं का आदान-प्रदान नहीं कर रहा, बल्कि आदर्शों का निर्माण कर रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ व्यक्ति के दैनिक जीवन में इस तरह हस्तक्षेप कर रही हैं कि उसका चुनाव-क्षेत्र सीमित और निर्देशित होता जा रहा है। अलका सरावगी अपने उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में इस बाज़ार-प्रवेश की सर्वव्यापकता को रेखांकित करते हुए लिखती हैं कि किस प्रकार हिंदुस्तान लीवर जैसी कंपनियाँ करोड़ों भारतीय घरों के भीतर प्रवेश कर चुकी हैं। उनका यह कथन - "इंडिया के बीस करोड़ घरों में से करीब साढ़े सोलह करोड़ घरों के अंदर हिंदुस्तान लीवर कुछ ना कुछ छोटा-मोटा सामान जैसे कि तेल या साबुन लेकर घुसा हुआ है..."[2] इस तथ्य को उजागर करता है कि बाज़ार अब बाहरी शक्ति न रहकर घरेलू जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। यहाँ 'घुसा हुआ है' जैसे शब्द बाज़ार के आक्रामक और अनैतिक विस्तार की ओर संकेत करते हैं। संयुक्त परिवारों के विघटन और रसोई की बढ़ती संख्या को लेखिका बाज़ार के लिए नए उपभोक्ता-क्षेत्र के रूप में देखती हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक परिवर्तन को भी बाज़ार अपने विस्तार के अवसर में बदल लेता है।

बाज़ार का प्रभाव केवल वस्तुओं तक सीमित नहीं है; वह संचार माध्यमों के ज़रिये व्यक्ति के मानस में प्रवेश करता है और इच्छाओं का निर्माण करता है। विज्ञापन और टेलीविजन के माध्यम से सपनों का ऐसा संसार रचा जा रहा है, जिसमें भौगोलिक और सांस्कृतिक दूरी गौण हो जाती है। अलका सरावगी लिखती हैं - "जमाना 'ये दिल मांगे मोर' का है... इस देश की एक अरब जनता अब एक साथ सपने देख रही हैं।"[3] यह कथन बाज़ार द्वारा निर्मित उस 'सपनों की लोकतांत्रिकता' को उजागर करता है, जहाँ सपने देखने का अधिकार सबको है, किंतु उन्हें पूरा करने की क्षमता समान नहीं है। इस असमानता के कारण ही बाज़ार व्यक्ति को निरंतर असंतोष और तुलना की अवस्था में बनाए रखता है। यहीं पर आदिवासी समाज का उदाहरण यह दर्शाता है कि उपभोग की संस्कृति अब उन समाजों तक पहुँच चुकी है, जिनकी जीवन-दृष्टि परंपरागत रूप से सामूहिक और प्रकृति-आधारित रही है।

इन सपनों को पूरा करने की निरंतर होड़ व्यक्ति को यांत्रिक बनाती जा रही है। नवीनतम सुविधाओं को प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा में व्यक्ति स्वयं को वस्तुओं के मूल्य से आंकने लगता है। अलका सरावगी के उपन्यास 'शेष कादंबरी' में रूबी दी का चरित्र इस मानसिकता का प्रतिनिधि उदाहरण है। चमचमाती नई गाड़ियों के बीच अपनी पुरानी एम्बेसडर को देखकर उनका स्वयं को पिछड़ा हुआ महसूस करना - "वह पहले अपने को जमाने के साथ पाती थीं, पर अब... अपने को बहुत अकेला और पिछड़ा हुआ पाती है।"[4] यह दर्शाता है कि बाज़ार ने 'प्रगति' की परिभाषा को केवल भौतिक उपभोग से जोड़ दिया है। यहाँ हीन-भावना सामाजिक स्थिति से नहीं, बल्कि उपभोक्ता क्षमता से जन्म लेती है।

बाज़ार केवल सपनों का निर्माण ही नहीं करता, बल्कि उन्हें प्राप्त करने के साधन भी उपलब्ध कराता है। 'कर्ज' जैसे नकारात्मक शब्द को 'फाइनेंस' जैसे आकर्षक शब्द में बदलकर व्यक्ति को स्थायी उपभोक्ता बना दिया जाता है। 'शेष कादंबरी' में लेखिका लिखती हैं - "इस तरह की भीड़ जो बैंक फाइनेंस पर रोज नई-नई खरीदकर बढ़ाई जा रही है..."[5] यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि फाइनेंस की सुविधा व्यक्ति को आर्थिक रूप से सशक्त नहीं, बल्कि बाज़ार का आजीवन आश्रित बना देती है। उपभोग के लिए लिया गया कर्ज व्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करता है और उसे व्यवस्था के अधीन कर देता है।

आज के युवा वर्ग के जीवन में उपभोग ही जीवन-मूल्य बनता जा रहा है। रजनी गुप्त अपने उपन्यास 'एक न एक दिन' में इस प्रवृत्ति को रेखांकित करती हैं, जहाँ जीवन का लक्ष्य 'मनी-मनी' तक सीमित हो गया है। उनका कथन-

"आज जीने का एक ही फार्मूला है - इनवेस्ट, फंड एंड फना।"[6] यह दर्शाता है कि पूँजी अब साधन न रहकर साध्य बन चुकी है। इस प्रक्रिया में मानवीय संबंध, संवेदनशीलता और सामाजिक दायित्व हाशिये पर चले जाते हैं।

बाज़ार-संचालित समाज का एक गंभीर परिणाम पारंपरिक घरेलू व्यापारों का पतन है। संगठित रिटेल और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन से छोटे दुकानदारों का अस्तित्व संकट में पड़ गया है। अलका सरावगी इस स्थिति को अत्यंत संवेदनशीलता से व्यक्त करती हैं, जहाँ पुश्तैनी व्यापार समाप्ति की कगार पर है और उपभोग 'एयरकंडीशंड सुपर मार्केट' तक सिमट गया है। यह परिवर्तन केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना को भी प्रभावित करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि बाज़ार-केंद्रित सभ्यता प्रगति के नाम पर मानवीय मूल्यों, सामूहिकता और आत्मनिर्भरता के क्षरण की कहानी कहती है। समकालीन हिंदी उपन्यास इस सभ्यता के यथार्थ को उजागर करने के साथ-साथ उसके प्रतिरोध की वैचारिक भूमिका भी निभाते हैं।

2. विज्ञापन संस्कृति और जनसंचार माध्यमों का वर्चस्व - भूमंडलीकरण के दौर में संचार क्रांति ने पूरे विश्व को एक करने की परिकल्पना को संभव बनाया और जनसंचार माध्यम ने विज्ञापन संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया। आज हर वह चीज "जो दिखेगा, वही बिकेगा" के सिद्धांत पर आधारित है। आज आवश्यकता आविष्कार की जननी ना होकर, आविष्कार ने आवश्यकता को बढ़ावा दिया है। बाजार का प्रभुत्व कायम हुआ है, तो इसमें सबसे बड़ी भूमिका विज्ञापन संस्कृति की है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं - "विज्ञापन का मायावी जगत जिस प्रकार बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देता हुआ विज्ञापित वस्तु की मांग को बढ़ा रहा है, देखकर विस्मय होता है। विज्ञापन किसी न किसी रूप में विश्व के सभी देशों में विद्यमान रहा है किंतु आज उसका स्वरूप बिल्कुल बदला हुआ है। आज इसका उद्देश्य हो गया है आवश्यकता ना होने पर वस्तु के तीव्र ललक और प्राप्ति की दूरध्वनि या कामना जगा देना। वह वस्तु की गुणवत्ता को रेखांकित नहीं करते, अपितु उसके तीव्र आवश्यकता का अनुभव करा देने के विश्वासी हैं।"[7] टी० बी० ने विज्ञापन को घर-घर तक पहुंचाया, तो प्रत्येक घर ने अतिथि देवो भवः के सिद्धांत के तहत न केवल उसे अपनाया, बल्कि अपने घर में ही बसा लिया। जनसंचार माध्यम ने विज्ञापन को इतनी ताकत प्रदान की कि आप कुछ भी बेच सकते हैं। विज्ञापन की अप-संस्कृति कैसे हमारे जीवन को प्रभावित कर रही है, इसका जिक्र करते हुए अलका सरावगी उपन्यास 'शेष कादंबरी' में लिखती हैं - "सारे विज्ञापनों में खाली सफाई का भूत है चाहे कपड़ों की धुलाई के लिए "सर्फ" की खरीदारी में ही समझदारी है, या 'फेना ही लेना' या निरमा, रिन, एरियल वगैरह और साथ में कपड़े धोने की मशीने, चाहे शरीर और चेहरे की सफेदी सुंदरता का राज बताते साबुन और क्रीमें; चाहे बालों की सफाई और मजबूती और रूसी की सफाई करते शैंपू, चाहे दांतो की सफाई के लिए तरह-तरह के मंजन-ब्रश, चाहे बर्तनों की सफाई या फर्श या पखाने की कीटाणु रहित सफाई करते तरह-तरह के बोतलों में बंद द्रव्य।।"[8] यानी हमारी हर छोटी-बड़ी जरूरत को पूरा करने के लिए हमें क्या लेना है, कैसे जीना है विज्ञापन ने दिखा दिया है, जिससे सर्वसाधारण हैरान परेशान है। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में अलका सरावगी ने दिखाया है कि किस प्रकार मार्केटिंग का नया अफीम विज्ञापन है। उपन्यास में मद्रास का 'एंबल डिपार्टमेंटल स्टोर' एक दिन में करोड़ों के सामान बेच डालता है, तो इसके पीछे उसके विज्ञापन की नीति है। जिसके तहत मनोरंजन जगत के प्रसिद्ध अभिनेता रविकांत के जन्मदिन पर विज्ञापन आता है कि उस दिन वह उस स्टोर में मास्क लगाकर वही शानदार सूट पहनकर रहेंगे। फलतः उनसे मिलने की लालसा में हजारों की संख्या में लोग उस स्टोर में इकट्ठा हो जाते हैं। उपन्यासकार लिखती हैं - "स्टोर में मास्क लगाएं वही शानदार सूट पहने मौजूद रहेगा, जिसका विज्ञापन पूरे शहर भर में लगा हुआ था और हर अखबार में पूरे पृष्ठ पर फैला हुआ था।... यह बात रविकांत हर टीवी चैनल और रेडियो से बोल रहा था।"[9] जनसंचार माध्यम और विज्ञापन ने हमें केवल पूंजी का गुलामी नहीं बनाया है, बल्कि बेचने को धर्म बना हमें संवेदनहीन भी बना दिया है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं - "पश्चिमीकरण अमेरिकीकरण का यह सबसे सशक्त माध्यम जिस रूप में मनोरंजन परोस कर हमारी जीवन पद्धति की दिशाएं निर्धारित कर रहा है, वह

सभी के लिए चिंता का विषय है।"[10] सनसनीखेज बनाकर किस प्रकार चैनल में घटना का विज्ञापन दिखाया जाता है, ताकि वो लाभ कमा सके, इसे भी लेखिकाओं ने विषय बनाया है - "जयपुर में कोई बच्चा कहीं गड्ढे में गिर गया है, तो चौबीसो घंटे तक (टी) वी) पत्रकार) टीवी में चिल्लाकर बता रही है कि वह अभी तक जिंदा है और उसे निकालने के लिए क्या-क्या किया जा रहा है। निमोनिया होकर अस्पताल में भर्ती अपनी मां अभी तक जिंदा है या नहीं, यह जानने की उसे फुरसत नहीं।"[11] जनसंचार माध्यम से प्रभावित होते हमारे मूल्य व विकृत होती सभ्यता पर भी चिंता व्यक्त की गई है। 'शेष कादंबरी' में अलका सरावगी रूबी दी के माध्यम से इस चिंता को व्यक्त करती हुई लिखती हैं - "टीवी सीरियलों में जो बात रूबी दी को सबसे अधिक बिकाऊ लगी, वह थी शादीशुदा माँ-औरतों के गैर औरतों-मर्दों से संबंध या प्रेम का वही पुराना त्रिकोण। दो लड़कियां-एक लड़का या एक लड़की-दो लड़के। बाप रे, रूबी दी ने सोचा, इन्हें देखने वाले बच्चे तो यही समझ कर बड़े होंगे कि जीवन में कोई तीसरा हुए बिना जीवन में ना कोई सनसनी है ना मजा और ऐसा होना आम बात है।"[12] विज्ञापन से फैल रही अपसंस्कृति का यहां प्रतिरोध है।

3. सौंदर्य के बदलते प्रतिमान और स्त्री देह का बाजारीकरण - भूमंडलीकरण ने जो बाजार खड़ा किया उसने देह केंद्रित सौंदर्य की संस्कृति को बढ़ावा दिया। सौंदर्य प्रतियोगिता, गली-मोहल्ले के मोड़ पर खुलते पार्लर, स्पा, फैशन शोज, सौंदर्य प्रसाधन का धड़ल्ले से निर्माण बढ़ा। बाजार का उद्देश्य देह केंद्रित सौंदर्य को बढ़ावा देना है और इस सौंदर्य का उपयोग कर एक बड़ा बाजार बन रहा है। जयश्री राय अपनी कहानी 'काली कलूटी' में सौन्दर्य की अप-संस्कृति के बारे में लिखती हैं - "जिंदगी अब बाजार में पड़ी हुई एक वस्तुमात्र है.... इंसान को कैसा होना चाहिए, यह यही बाजार तय करता है... अच्छी प्रसाधन कंपनियां बताती हैं आज की औरतों को गोरी, खूबसूरत, जीरो फिगर की होना चाहिए, जिसके बाल रेशमी, मुलायम और रंगीन हों, पलकें मसकरा लगाए घनी-लंबी हों, होंठ इस रंग के हो और गाल उस रंग के हो। वह डिजाइनर अंतर्वस्त्र पहने... तभी उसकी शादी होगी, तभी उसे कारपोरेट कंपनियों में ग्लैमरस नौकरी मिलेगी।"[13] बाजारवादी सभ्यता में दिनचर्या का यही नया ढब हावी है कि हमारी सफलता-विफलता का पाठ रच रहा है बाजार। सौंदर्य का जो नया बाजार निर्मित हुआ है, उसने सौंदर्य की परिभाषा को बदल दिया और इससे सबसे ज्यादा विकृति आई है स्त्री के जीवन में। गोरापन सौंदर्य का प्रतिमान बन गया है। ऐसे में जो लड़की सांवली होती है, वह जिस दंश को झेलती है, उसका वर्णन जयश्री राय ने अपनी कहानी 'काली-कलूटी' में किया है। जहां नौकरी पेशा लावण्या को अपने रंग के कारण बार-चार अपमानित होना पड़ता है और अंततः वह विक्षिप्त हो जाती है। कथानायिका लावण्या की भाभी लड़केवालों का उसको देखने आने के अवसर पर उसे हिदायत देती हैं - "खूब रगड़कर नहाना लाडो, फिर देखना, तुम भी फिल्म तारिकाओं की तरह फेयर एंड लवली हो जाओगी।"[14] अनामिका ने भी अपने उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में ब्यूटी पार्लर को प्रतिरोधी स्थल के रूप में दिखाया है। गुण जरूरी नहीं है, बल्कि सुंदर दिखना जरूरी है। कैसे ब्यूटी पार्लर आज नारी जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है - पेश किया है। सौन्दर्य के रूढ़ मानक बाजारवादी सभ्यता में नई चुनौतियों के सामने खड़े है। अनामिका 'तिनका तिनके पास' में लिखती हैं - "ब्यूटी पार्लर आधुनिक जीवन का एक ऐसा स्पेस है मेरे मालिक...पीट-पीटकर घर से निकाली हुईं...औरतों के पास जाने की और कोई जगह नहीं होती, तो ब्यूटीपार्लर ही आ जाती हैं। यह एक ऐसी इंसुलेटेड-सी जगह है, जहां कोई फालतू सवाल पूछे बगैर, स्नेह सिक्त हाथों से एक सखी मालिश कर देगी, जहां-जहां चोट लगी है, वहां रख देगी बर्फ की पट्टियाँ, अगर कभी पर्स में पैसे नहीं हैं, तो कभी धक्के मार कर निकलेगी नहीं, हो लेने देगी प्रकृतस्थ इधर-उधर के किस्से कहानियां-रेडियो-वीडियो, एफ. एम वगैरा सुनाकर मन बदल देगी... खग जाने खग ही की भाषा।"[15] ब्यूटी पार्लर भी प्रतिरोध का औजार है।

4. स्त्रीत्व बनाम मातृत्व : बाजारवादी सौंदर्यबोध का द्वंद्व - बाजारवादी सौंदर्यबोध का सबसे गहरा प्रभाव मातृत्व पर पड़ा है। सौन्दर्य के विकृतिकरण का परिणाम है कि आज मातृत्व संकट में है। सुंदरता बनाए रखने की होड़ में

मातृत्व को बोझ समझा जाने लगा है। निर्मला भुराड़िया का उपन्यास 'गुलाम मंडी' इस संकट को उजागर करता है, जहाँ कल्याणी जैसी पात्र सुंदरता की रक्षा के लिए मातृत्व से दूरी बनाए रखना चाहती है। लेखिका लिखती हैं - "गौतम बच्चा चाहता था।... मगर कल्याणी को डर था कि इससे उसके पेट पर सिलवटे आ जाएगी।...वह गौतम को अपनी दादी का उदाहरण देना चाहती थी कि उस जमाने में भी जब कल्याणी के पिता, ताऊ जब शिशु थे, तब उनकी और शिशु अवस्था में काल कवलित हुए बुआ...तब भी दादी ने किसी को दूध नहीं पिलाया। दूध पिलाने के लिए धाय की नियुक्ति की जाती थी, ताकि दादी का शरीर ना बिगड़े।"[16] सुंदरता कायम रहे, मातृत्व भले पीछे छूट जाए। यह स्थिति दर्शाती है कि बाजार किस प्रकार स्त्री जीवन के सबसे स्वाभाविक अनुभव को भी नियंत्रित करने लगा है।

5. नशा, अपराध और मानव तस्करी : उपभोग संस्कृति की चरम परिणति - उपभोग आधारित समाज में धन और स्टेटस सर्वोपरि हो जाने से नशा, अपराध और मानव तस्करी जैसी समस्याएँ बढ़ी हैं। मधु कांकरिया का 'पत्ताखोर' और 'अपनी धरती अपने लोग' नशे में डूबते युवाओं की त्रासदी को सामने लाते हैं। अल्पना मिश्र का उपन्यास 'अस्थि फूल', निर्मला भुराड़िया का उपन्यास 'गुलाम मंडी' मानव-तस्करी जैसे जघन्य अपराध की बढ़ती गति की ओर संकेत कर रहा है।

पुष्पपाल सिंह ने लिखा है- "ड्रग्स-नशा-सेवन भी ऐसा ही नवाचार हैं, जो नई पीढ़ी में निरंतर बढ़ता जा रहा है। वस्तुतः यह बीमारी भी भूमंडलीकरण की देन है, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ड्रग्स का कारोबार किस रूप में फैल रहा है, इसे किस प्रकार अंजाम दिया जा रहा है.... भारतीय नवयुवक किस प्रकार हेरोइन, ब्राउन शुगर और चरस के लती हो चुके हैं।"[17] आज के युवा न केवल नशे के लती हो रहे हैं, बल्कि इसकी पूर्ति के लिए अपराध के रास्ते पर भी कदम रख रहे हैं। 'पत्ताखोर' उपन्यास में किशोर आदित्य नशे की चपेट में है और हेरोइन, गांजा, ताड़ी सब कुछ का सेवन कर रहा है। सिर्फ आदित्य ही नहीं उसकी उम्र के अन्य किशोर भी इस दलदल में डूबे हुए हैं। एक बार नशे की गह्वर में डूबने के बाद लाख कोशिश के बावजूद वह उसमें धँसता ही चला जाता है और इसके लिए आपराधिक गतिविधि तक करता है। इसी प्रकार गुलाम मंडी में भी देह व्यापार और नशे की दलदल में फंसे युवा की समस्या का चित्रण है। नशे के साथ अपराधीकरण तो जुड़ा ही हुआ है, साथ ही मानव तस्करी जैसी समस्या ने भी जन्म लिया है। 'कंज्यूम कल्चर' कितना विकृत हो सकता है। इससे कितनी घिनौनी सभ्यता विकसित हो सकती है, मानव देह की खरीद बिक्री इसका जीवंत प्रमाण है। 'अस्थि फूल' उपन्यास में अल्पना मिश्र मानव तस्करी की स्थिति के बारे में लिखती हैं - "यूनाइटेड नेशन' की रिपोर्ट है कि भारत मानव तस्करी का बड़ा बाजार बन चुका है। वर्ष 2009 से 2011 में 177660 लापता बच्चों की दर्ज गुमशुदगी, जिसमें चौंसठ फीसदी नाबालिक लड़कियां हैं। इसी समय लगभग एक लाख साठ हजार औरतें लापता हैं, जो फाइलों में दर्ज हैं, छप्पन हजार का अब तक कोई पता नहीं। और ये देखो, हमारी महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट 2016 में बीस हजार औरतें और बच्चे तस्करी का शिकार... हर साल झारखंड में तैंतीस हजार नाबालिग लड़कियों और बच्चों की तस्करी... बाकी हजारों, लाखों केस, जो दर्ज नहीं है।"[18] लेखिका निर्मला भुराड़िया ने अपने उपन्यास 'गुलाम मंडी' के माध्यम से देश-विदेश में मकड़जाल फैला चुकी मानव तस्करी की अंतरराष्ट्रीय समस्या को सामने रखा है कि किस प्रकार काम के लालच में मजबूरी व विवशता का लाभ उठा- चुराकर, गरीब परिवार की लड़कियों को देश-विदेश के विभिन्न कोनों में भेज दिया जाता है। उनकी तस्करी कर मनमाना पैसा कमाया जाता है और उनकी कमाई का हिस्सा तक न तो उन्हें मिलता है, न ही उनके परिजनों को भेजा जाता है। उनके साथ जानवर जैसा व्यवहार किया जाता है - "दरअसल छोटे-छोटे बने इन स्टेजों में से लगभग हर एक पर एक अलग ही नस्ल की युवती नाच रही थी। कोई अफ्रीकन-अमेरिकन है, कोई मैक्सिकन है, कोई एशियन, तो कोई गोरी भी। नस्ल कोई भी हो, यहां बैठे लार-टपकाते पुरुषों के लिए तो वे सब मांस की लुगदी ही है। उन्हीं को रिझाने के लिए वे नग्न नाच रही है। नाच क्या रही हैं संगीत की धुन पर अश्लील,

संभोग मुद्राएं कर रही है।...मगर करीब जाकर इन युवतियों को छूने के भी डॉलर लगते हैं। अतः कोई स्वान की तरह किसी युवती के पीछे से जाकर उसे छूता है, सूंघता है और बदले में युवती की कमर में बंधी डोरी में डॉलर टाँग देता है।...यहाँ हर हरकत पर पुरुषों को डॉलर टांगना होता है। उसके चलते नाचती युवतियों की कमर पर डॉलर की झालर सी बन गई है, मगर यह झालर खुद इन्हें नहीं मिलने वाली। दलाल और यहां लाने वाले माफियाओं को मिलने वाली है।"[19] उनके साथ कैसा यातनापूर्ण व्यवहार किया जाता है, उसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखती हैं - "और लड़कियों की ही तरह जेन ने भी करीब चार-पांच इंच की ग्लास हील्स की सैंडल पहनी थी, जिन्हें पहनकर लगातार नाचना काफी यंत्रणादायक काम था, मगर मना नहीं किया जा सकता था। मैक्सिको की अडेला को तो दो दिन से तेज बुखार भी था।"[20] जो संस्थाएं ऐसे व्यापार से मुक्त कराने का काम करती है वहां भी इन स्त्रियों का जबरदस्त शोषण होता है अल्पना मिश्र ने अपने उपन्यास 'अस्थि फूल' में इस त्रासदी को भी विषय बनाया है और इस स्थिति का प्रतिरोध किया है।

निष्कर्ष

भूमंडलीकरण और उदारीकरण के परिणामस्वरूप विकसित बाजारवादी संस्कृति ने आधुनिक समाज की संरचना, मूल्यबोध और जीवन-दृष्टि को गहराई से प्रभावित किया है। भूमंडलीकरण से उपजी बाजारवादी संस्कृति ने नागरिक को उपभोक्ता और संबंधों को वस्तु में बदल दिया है। बाज़ार अब केवल आर्थिक व्यवस्था नहीं रहा, बल्कि वह व्यक्ति की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और सामाजिक संबंधों को भी नियंत्रित करने लगा है। इस प्रक्रिया में नागरिक का रूपांतरण उपभोक्ता में हो गया है और मनुष्य का मूल्य उसकी मानवीय संवेदनाओं से नहीं, बल्कि उसकी उपभोग-क्षमता से निर्धारित होने लगा है। परिणामस्वरूप संवेदनशीलता, सामूहिकता और नैतिक मूल्यों का धीरे-धीरे क्षरण हो रहा है। समकालीन हिंदी स्त्री लेखन इस बदलते यथार्थ को गंभीर आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करता है। अलका सरावगी, निर्मला भुराड़िया, अल्पना मिश्र, मधु कांकरिया, जयश्री राय और अनामिका जैसी लेखिकाओं की रचनाएँ दिखाती हैं कि विज्ञापन संस्कृति, उपभोक्तावाद और बाजार संचालित जीवन-शैली ने व्यक्ति की चेतना और संबंधों को किस प्रकार प्रभावित किया है। विशेष रूप से स्त्री जीवन पर इसका प्रभाव अधिक स्पष्ट है, जहाँ सौंदर्य के विकृत मानकों ने स्त्री-देह को वस्तु में बदल दिया है और उसके अस्तित्व को बाह्य आकर्षण तक सीमित कर दिया है। इसके साथ ही उपभोग की अंधी दौड़ ने नशा, अपराध और मानव तस्करी जैसी गंभीर समस्याओं को भी जन्म दिया है। इन परिस्थितियों में 21वीं सदी का स्त्री लेखन केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण ही नहीं करता, बल्कि बाजारवादी मानसिकता के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक प्रतिरोध भी प्रस्तुत करता है और मानवीय संवेदनाओं तथा सामाजिक मूल्यों की पुनर्स्थापना की आवश्यकता पर बल देता है। यह लेखन हमें चेतावनी देता है कि यदि सभ्यता को केवल बाजार के हवाले कर दिया गया, तो मानवता स्वयं संकट में पड़ जाएगी।

संदर्भ सूची

1. सिंह, पुष्पपाल. भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पहला संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012. पृष्ठ 42
2. सरावगी, अलका. एक ब्रेक के बाद, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2008. पृष्ठ 14
3. वहीं, 11
4. सरावगी, अलका. शेष कादंबरी, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2008. पृष्ठ 25
5. वहीं, 142
6. गुप्त, रजनी. एक न एक दिन, प्रथम संस्करण, किताबघर प्रकाशन, 2008. पृष्ठ 311
7. सिंह, पुष्पपाल. भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पहला संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012. पृष्ठ 49
8. सरावगी, अलका. शेष कादंबरी, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2008. पृष्ठ 117

9. सरावगी, अलका. एक ब्रेक के बाद, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2008. पृष्ठ 121
10. सिंह, पुष्पपाल. भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पहला संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012. पृष्ठ 47
11. सरावगी, अलका. एक ब्रेक के बाद, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2008. पृष्ठ 163
12. सरावगी, अलका. शेष कादंबरी, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2008. पृष्ठ 197
13. राय, जयश्री, काली कलूटी, हिन्दी समय डॉट कॉम
14. वहीं
15. अनामिका, तिनका तिनके पास, प्रथम संस्करण,वाणी प्रकाशन 2008. पृष्ठ 32
16. भुडारिया, निर्मला. गुलाम मंडी, पहला संस्करण, सामयिक प्रकाशन,2014. पृष्ठ 78
17. सिंह, पुष्पपाल. भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पहला संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012. पृष्ठ 201
18. मिश्र, अल्पना, अस्थि फूल, पहला संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2019. पृष्ठ 215
19. भुडारिया, निर्मला. गुलाम मंडी, पहला संस्करण, सामयिक प्रकाशन,2014. पृष्ठ 16
20. वहीं, 26